International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 281-285

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 281-285
www.allresearchjournal.com
Received: 10-11-2014
Accepted: 16-12-2014

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

आचार्य विश्वनाथ कविराज और साहित्यदर्पण

डॉ. अशोक कुमार दुबे

सारांश
साहित्यदर्पणकार अलंकारिक चक्रवर्ती महापात्र आचार्य विश्वनाथ कविराज अपूर्व विद्या विभूषित व्यक्तित्व थे। आप त्रिकलिंग गजपति साम्राज्य के सान्धिविग्रहिक थे। आप में अपूर्व कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा थी। साथ ही राज्याश्रित जीवनशैली के कारण जीवन में स्वाध्याय का भरपूर अवसर आपको उपलब्ध हो सका। आपको साहित्य–समुद्र का कर्णधार कहा गया है। ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य परम्परा व्याख्यान की पंक्ति में आपका स्थान प्रथम है। आप अष्टादश भाषा के ज्ञाता रहे हैं। फलतः आप द्वारा सूत्र 'साहित्यदर्पण' संस्कृतसाहित्य समाज के लिए अनिवार्य एवं तत्वप्रदायक महाग्रन्थ है।
पहली बार आचार्य विश्वनाथ कविराज ने संस्कृत साहित्य के मूल प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य का उल्लेख किया। आपके अनुसार संस्कृतसाहित्य का मुख्य प्रयोजन मनुष्य हेतु प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को पहचानना है। साहित्य मनुष्य के लिए केवल आनन्दप्रदायक माध्यम मात्र नहीं है। साहित्य के द्वारा मनुष्य अपना चरित्र और परम प्राप्तव्य दर्पण की तरह देख सकता है। अतः साहित्य का मुख्य कार्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के स्वरूप को दर्पणविद् उद्भाषित करना है। हो सकता है अनेक विद्वान् एवं मौलिकग्रन्थकार सात्यि के इस प्रयोजन से सहमत न हों, परन्तु आचार्यविश्वनाथ कविराज का यह वक्तव्य वैदिक परक्पपरा के अनुरूप है। वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य का जीवन चतुवर्गफलप्राप्ति हेतु विधाता द्वारा उपलब्ध कराया गया वरदान है। शास्त्र का कार्य प्रवृत्ति और निवृत्ति को बतलाना है। संस्कृत साहित्य इससे बँधा है। अतः संस्कृत साहित्य पर भी यह सिद्धान्त लागू होता है–

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमिति कथ्यते।।

मुख्य शब्दः चन्द्रशेखर, प्रकाण्ड, अलंकार और शास्त्र, विभूषित, अक्षय, यश आदि

प्रस्तावना

आचार्य विश्वनाथ कविराज का समय

आचार्य विश्वनाथ कविराज का समय 1300 से 1350 ईस्वी के बीच का निर्धारित है। आप चौदहवीं शताब्दी में हुये थे। आपकी उपस्थिति का साक्ष्य आपके ग्रन्थ साहित्यदर्पण में प्राप्त होता है –

सन्धौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
अल्लाउद्दीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः।। [1]

प्रस्तुत श्लोक में दिल्ली के शासक (सुल्तान) अलाउद्दीन खाँ खिलजी का उल्लेख किया गया है। अलाउद्दीन का शासनकाल 1216 से 1316 ईस्वी तक रहा है। अतः आचार्य विश्वनाथ कविराज का जीवनकाल 14वीं शताब्दी का है, इसमें सन्देह नहीं है।

वंश परम्परा

आचार्य विश्वनाथ कविराज के पिता का नाम चन्द्रशेखर था। आप संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् एवं महाकवि थे। आप द्वारा विरचित ग्रन्थद्वय पुष्पमाला और भाषार्णव उपलब्ध है। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने दो श्लोकों के माध्यम से अपने संदर्भ में इतिवृत्त का प्रकटीकरण किया है–

श्रीचन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनु श्रीविश्वनाथकाविराजकृतं प्रबन्धम्।
सहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेव वित्त।।
र्नारायणस्याङ्गमलङ्करोति।
तावन्मनः सम्मदयन् कवीना– मेष प्रबनधः प्रथितोऽस्तु लोके।।

आचार्य विश्वनाथ केवराज के पुत्र का नाम अनन्तदास था। श्री अनन्तदास ने साहित्यदर्पण के ऊपर लोचन नामक टीका लिखी है। ग्रन्थ समाप्ति पर लोचन टीका के अन्त में लिखा है–

> श्रीमदालङ्कारिकचक्रवर्तिगजपतिसाम्राज्यसान्धिविग्रहिकश्रीविश्व नाथकविराजात्मजश्रीमदनन्तकास–कृतौसाहित्यदर्पणलोचने दशमः परिच्छेदः समाप्तः।

आचार्य विश्वनाथ कविराज एक ऐसा वंश में उत्पन्न हुए थे जिसमें अनेक पीढ़ियों तक संस्कृत सरस्वती की धारा बहती रही। श्री नारायणदास के पुत्र श्री चन्द्रशेखर एवं उनके पुत्र श्रीमद् अनन्तदास ये चार पीढ़ियाँ महाकवित्वशक्ति से सम्पन्न थीं। निःसन्देह ऐसे वंश के ऊपर भगवती शक्ति की अपार कृपा थी। महाकवि चन्द्रशेखर एवं आचार्य विश्वनाथ कविराज कलिंगराज के संधिविग्रहिक थे।

सरलग्रन्थ का प्रणयन

संस्कृत साहित्य के मेधावी मनीषीगण निर्दिष्ट करते हैं कि 'साहित्यदर्पणः' ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के सुकुमारमति स्नातकों के लिए मिष्टौषध स्वरूप है। अतः इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। संस्कृत साहित्य को समझने के लिए साहित्यदर्पण के सोपान से गुजरना आवश्यक है। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने इस संदर्भ में अपना अभिमत निम्नवत् रखा है–

> चतुर्वगफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
> काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।।
> चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्हि काव्यतो रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यम्, न रावणादिवदित्यादिकृत्या–
> कृत्याकृत्यप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशद्वारेणसुप्रतीतैव। [2]

सामान्य से सामान्य अध्येता सुखपूर्वक जटिल संस्कृतसाहित्य को समझ सकता है, साथ ही उसे काव्य के माध्यम से चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। अतः साहित्यदर्पण ग्रन्थ रामादियत् ग्राह्य पितृ आज्ञा पालन के उपदेश को प्रस्तुत करता है और रावणादिवत् परदारहरण दुष्कर्म का निषेध करता है। फलतः अतिप्रौढ़ विषयों को सरल रीति से प्रतिपादित कर अलंकारशास्त्र के गूढ़ विषयों को न्यूनतम प्रयत्नों से अवगत करा देने की अपूर्व क्षमता आचार्य विश्वनाथ कविराज के साहित्यदर्पण ग्रन्थ में विद्यमान् है।

साहित्यदर्पण के संदर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते है–यह ग्रन्थ काव्यप्रकाश की शैली पर लिखा गया है, परन्तु उतनी प्रौढ़ता इस ग्रन्थ में नहीं है। विश्वनाथ आलंकारिक की अपेक्षा कवि अधिक थे। यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय है और अलंकारशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के जिज्ञासु छात्रों के लिए नितान्त उपयोगी है (संस्कृत साहित्य का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, अलंकारशास्त्र, विश्वनाथ कविराज)

आचार्य बलदेव उपाध्याय स्वतः के वक्तव्य में विरोधाभास है। ध्येय है कि आचार्य विश्वनाथ कविराज ने स्वतः प्रतिज्ञा की थी कि वे सुखादल्पधियामपि हेतु ग्रन्थ लिख रहे हैं, फिर उनसे प्रौढ़त्व की अपेक्षा करना दुरूहता को आमंत्रित करना होगा।

साहित्यदर्पण का प्रतिपाद्य

साहित्यदर्पणकार अलंकारिक चक्रवर्ती महापात्र आचार्य विश्वनाथ कविराज अपूर्व विद्या विभूषित व्यक्तित्व थे। आप त्रिकलिंग गजपति साम्राज्य के सान्धिविग्रहिक थे। आप में अपूर्व कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा थी। साथ ही राज्याश्रित जीवनशैली के कारण जीवन में स्वाध्याय का भरपूर अवसर आपको उपलब्ध हो सका। आपको साहित्य–समुद्र का कर्णधार कहा गया है। ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य परम्परा व्याख्यान की पंक्ति में आपका स्थान प्रथम है। आप अष्टादश भाषा के ज्ञाता रहे हैं। फलतः आप द्वारा सूत्र 'साहित्यदर्पण' संस्कृतसाहित्य समाज के लिए अनिवार्य एवं तत्वप्रदायक महाग्रन्थ है।

पहली बार आचार्य विश्वनाथ कविराज ने संस्कृत साहित्य के मूल प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य का उल्लेख किया। आपके अनुसार संस्कृतसाहित्य का मुख्य प्रयोजन मनुष्य हेतु प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को पहचानना है। साहित्य मनुष्य के लिए केवल आनन्दप्रदायक माध्यम मात्र नहीं है। साहित्य के द्वारा मनुष्य अपना चरित्र और परम प्राप्तव्य दर्पण की तरह देख सकता है। अतः साहित्य का मुख्य कार्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के स्वरूप को दर्पणविद् उद्भाषित करना है। हो सकता है अनेक विद्वान् एवं मौलिकग्रन्थकार साहित्य के इस प्रयोजन से सहमत न हों, परन्तु आचार्यविश्वनाथ कविराज का यह वक्तव्य वैदिक परक्परा के अनुरूप है। वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य का जीवन चतुवर्गफलप्राप्ति हेतु विधाता द्वारा उपलब्ध कराया गया वरदान है। शास्त्र का कार्य प्रवृत्ति और निवृत्ति को बतलाना है। संस्कृत साहित्य इससे बँधा है। अतः संस्कृत साहित्य पर भी यह सिद्धान्त लागू होता है–

> प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
> पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमिति कथ्यते।।

काव्यप्रकाश से प्रेरणा

संस्कृतसाहित्य के अलंकार ग्रन्थों की परम्परा में आचार्य मम्मट की कृति काव्यप्रकाश अपूर्व यशस्वी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के कारण आचार्य मम्मट को वाग्देवतावतार की उपाधि से विभूषित किया गया है। आचार्य मम्मट की सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य जगत् में वाग्देवतार के रूप में सरलता से स्वीकार कर लेना उनकी मेधा और योग्यता का परिचायक है। आचार्य मम्मट ने अलंकारशास्त्र के समस्त प्रतिपाद्य विषयों को एकत्रित कर अपने काव्यप्रकाश ग्रन्थ में पिरोया। संस्कृत साहित्य के लक्षण विषयों को एक स्थान पर प्राप्त करने की महती आवश्यकता की पूर्ति पहली बार काव्यप्रकाश ग्रन्थ से पूर्ण हुई थी। इस एक उपलब्धि ने ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार की संस्कृत साहित्य के गगन में सूर्य की तरह स्थापित कर दिया।

आचार्य मम्मट की प्रासंगिकता

आचार्य मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों में अक्षययश की प्राप्ति एकमात्र आचार्य आनन्दवर्धन की हुई। यद्यपि आपके ग्रन्थ ध्वन्यालोक में काव्य के समस्त प्रविभागों का सांगोपांग वर्णन नहीं हुआ, परन्तु ध्वनि प्रस्थान की संकल्पना इतनी बड़ी संकल्पना थी जिसके कारण उन्हें अक्षय कीर्ति की प्राप्ति हुई। ध्वनि प्रस्थान के कारण अलंकार शास्त्रीय आचार्यों में दो समूह हो गया या तो ध्वनिविरोधी सम्प्रदाय बना या ध्वनिसमर्थक। ध्वन्यालोक के प्रादुर्भाव के बाद भी संस्कृत साहित्य में अलंकारशास्त्रीय विवेचन के समस्त मार्ग एक ग्रन्थ में नहीं खुल सके। फलतः आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश ग्रन्थ में इस कमी को दूर कर सर्वांगपूर्ण निर्मिति की। आचार्य मम्मट के पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा अलंकारशास्त्रीय प्रस्थान में जिन तत्वों का सन्निवेश किया गया वे ग्राह्य थे, परन्तु विषय विवेचना को पूर्णता तक पहुँचाने में असमर्थ थे। कहीं विषय विवेचना में न्यूनता थी तो कहीं विषय की उपस्थिति ही नहीं थी। इन सभी दुर्बलताओं को दूर कर आचार्य मम्मट ने एक ऐसी शास्त्रीय संरचना की जो आज भी चमकदार है। यह विच्छाय हो ही नहीं सकती।

पूववर्ती आचार्यों की परम्परा

आचार्य भामह (छठी शताब्दी), आचार्य दण्डी (आठवीं शताब्दी), आचार्य वामन (आठवीं शताब्दी), आचार्य रुद्रट (नवीं शताब्दी), आचार्य आनन्दवर्धन (नवीं शताब्दी), आचार्य राजशेखर (दशवीं

शताब्दी), आचार्य भट्टनायक (दशवीं शताब्दी), आचार्य कृन्तक (ग्यारहवीं शताब्दी), आचार्य महिमभट्ट (ग्यारहवीं शताब्दी), आचार्य क्षेमेन्द्र (ग्यारहवीं शताब्दी) तथा महाराज भोजराज ग्रन्थों की निर्मिति से संस्कृत साहित्य के लक्षण ग्रन्थों की परम्परा को परिपुष्टि मिली, इन सभी का समवेत विषयसमुपस्थापन आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में किया। इन सभी आचार्यों के मतों को आत्मसात् कर जिस तरह से आचार्य मम्मट ने एक नयी साहित्य सरस्वती धारा को प्रवाहित किया, वह विलक्षण सारस्वत, उपलब्धि थी। दैवी कृपा के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। अतः आचार्य मम्मट को वाग्देवतावतार कहना पड़ा। आपने प्रायशः छः सौ वर्षों के चिन्तन को आत्मसात् कर काव्यलक्षण परम्परा को जिस तरह से अमरत्व प्रदान किया, वह असम्भव एवं अविश्वसनीय कर्म था। इस अलंकार सरस्वती ने मम्मट के परवर्ती आचार्यों को वैभवपूर्ण अक्षय कोष प्रदान किया।

संस्कृत साहित्य का मध्यान्तर

आचार्य मम्मट (बारहवीं शताब्दी) अलंकारशास्त्र की परम्परा में ऐसे प्रस्थान पर खड़े मिलते हैं जहाँ से संस्कृत काव्य अलंकार सरस्वती की धारा दो भागों में विभाजित हो जाती है। पहली धारा मम्मट पूववर्ती आचार्यों की होती है, जबकि दूसरी धारा मम्मट के परवर्ती आचार्यों को है। आचार्य मम्मट का वैशिष्ट्य इसलिए सर्वाधिक है कि उन्होंने संक्षिप्त, सरल और सूत्र–विधि से काव्यशास्त्रीय सागर को चुल्लूकस्थ कर दिया।

परवर्ती आचार्यों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव

आचार्य मम्मट के परवर्ती आचार्यों के सामने अपनी रचना के माध्यम से अलंकारशास्त्रीय धारा में स्थिर होकर टिके रहने और कालजयी बने रहने हेतु प्रखर मेधा की आवश्यकता पग–पग पर महसूस होने लगी। काव्यप्रकाश में वर्णित सामग्री को स्वीकृत कर उससे आगे बढ़ना आसान नहीं था, न ही काव्यप्रकाश की स्थापना को पूर्ण रूप से काट पाना ही सम्भव था। फलतः बाद के लक्षणकार आचार्यों ने अपनी प्रखरता और मुखरता को मेधा से संयुक्त कर अलंकारशास्त्रीय विषय विवेचना की विशदता प्रदान की।

आचार्य मम्मट के बाद के आचार्यों में आचार्य रूय्यक, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य गुणचन्द्र, आचार्य वाग्भट्ट, आचार्य जयदेव, आचार्य विद्याधर, आचार्य विश्वनाथ कविराज, आचार्य अपपय दीक्षित, आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ही अपनी लेखनी से अमरयश प्राप्त कर सके। इनमें भी आचार्य चतुष्टयी के अनतर्गत आने वाले आचार्य ही विशेष पूजित हो सके। ये आचार्य हैं–आचार्य जयदेव, आचार्य विश्वनाथ कविराज, आचार्य अप्पय दीक्षित तथा आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ। ये चारों आचार्य काव्यप्रकाश की धारा की अतिक्रान्त करते हुए अपने विचारों से जीवन्तता उत्पन्न कर अलंकारशास्त्रीय परम्परा को अतिपुष्ट करते हैं। इनमें भी आचार्य विश्वनाथ कविराज और आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ऐसे चिन्तक के रूप में उभरते हैं जिनकी चर्चा छठी शताब्दी से लेकर सत्तरहवीं शताब्दी तक के अन्तराल को पूरित करती है। पण्डितराज जगन्नाथ में अपूर्व विलक्षणता है। विश्वनाथ कविराज में अलंकार तत्त्व के साथ नाट्य तत्त्व को समाहित कर लेने की मेधा है। आचार्य विश्वनाथ कविराज काव्यप्रकाश की नाट्यशास्त्रीय न्यूनता को पूर्ण करते हुए साहित्यदर्पण को सर्वविषय सम्पन्न ग्रन्थ के रूप में परिणत करते हैं। साहित्यदर्पण का षष्ठ परिच्छेद उनकी नाट्यशास्त्रीय विद्वता को स्थापित करता ळें

संस्कृतसाहित्य में दर्पण–बिम्ब की स्थापना

संस्कृत साहित्य की अलंकारशास्त्रीय परम्परा के शास्त्रकार आचार्यों ने अपने ग्रन्थ के नाम में अद्भुत बिम्बों का प्रयोग कर साहित्यजगत् को चमत्कृत किया। ग्रन्थ का नाम ही साहित्य के प्रयोजन को सपष्ट कर देने में सक्षम होता है। इस दृष्टि से भारतवर्ष में जो दीर्घकालिक प्रयोग हुए उनसे एक प्रबल धारा बनी। आचार्य भामह ने काव्य के साथ अलंकार जोड़ा। आपने साहित्य के स्थान पर काव्य शब्द का प्रयोग किया। आचार्य दण्डी ने भी अपने ग्रन्थ का नाम काव्यादर्श रखा। काव्यतत्त्व के आदर्शों का प्रतिपादन मौकिता के साथ इसमें प्राप्त होता है। वहीं आदर्श का एक दूसरा अर्थ दर्पण भी होता है। आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्र लिखा। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक नाम देकर एक नयी धारा निर्मित की। काव्य और साहित्य के लिए ध्वनि की दीप्त किरणें सर्वथा नवीन अनुभूति लेकर आयी। आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ का नाम वक्रोक्ति जीवित रखा। आचार्य महिमभट्ट ने साहित्य में विवेक को स्थापित करते हुए अपने ग्रन्थ का नाम व्यक्तिविवेक रखा। आचार्य क्षेमेन्द्र ने संस्कृत साहित्य में औचित्य सम्प्रदाय की स्थापना करते हुए औचित्यविचारचर्चा ग्रन्थ लिखा। महाराज भोजराज का श्रृंगारप्रकाश एक ऐसा विशाल ग्रन्थ था जो संस्कृत साहित्य में प्रकाश नाम बिम्ब को पहली बार स्थापित करने हेतु ख्यात हुआ। इनके ग्रन्थ की रचना के पश्चात् ही आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की। आचार्य जयदेव का चन्द्रालोक ग्रन्थ तथा आचार्य विश्वनाथ कविराज का साहित्यदर्पण ग्रन्थ भी संस्कृतसाहित्य के प्रयोजनों को अपने बिम्ब से पूरित करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। इस बिम्ब की स्थापना आचार्य विश्वनाथ कविराज ने की। यह स्थापना अपने आप में इतनी ख्यातिलब्ध हुई कि इसका प्रभाव अन्य भाषा के साहित्यों पर भी दिखने लगा। सूक्तियाँ चलने लगीं–साहित्य समाज का दर्पण होता है। अपने ग्रन्थ से साहित्य के लिए दर्पण बिम्ब को स्थापित करने वाले विश्वनाथ कविराज अपूर्व विचारक एवं शास्त्रज्ञ हैं।

विश्वनाथ कविराज का सम्प्रदाय

साहित्य दर्पण के अन्तिम श्लोक

> यावत्प्रसन्नेन्दुनिभानना श्रीर्नारायणस्याङ्गमलङ्करोति।
> तावन्मनः सम्मदयन् कवीनामेष प्रबन्धः प्रथितोऽस्तु लोके।।

के अनुसार तथा 'श्रीमन्नारायणचरणारविन्दधुव्रत' समापन वाक्य के अनुसार कतिपय आलोचक आचार्य विश्वनाथ कविराज को वैष्णव मानते हैं। परन्तु श्री विश्वनाथ कविराज सम्प्रदाय मुक्त व्यक्ति थे। उत्कल के ब्राह्मण प्रायशः पंचदेव की उपासना करते हैं। श्रीविश्वनाथ कविराज भी इसी परम्परा के संवाहक थे। आपने 'मूर्धव्याधूयमान' श्लोक तथा चन्द्रकला नाटिका के आरम्भ में जीयासुः शफरायमाणशशभृल्लेखा श्लोक में भगवान् शिव की स्तुति की है। आपके ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप पंचदेवों के समुपासक थे।

साहित्यदर्पण ग्रन्थ की विशेषता

संस्कृत साहित्य के अलंकार ग्रन्थों की महती परम्परा में ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण एवं रसगंगाधर ये चार ग्रन्थ अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान को धारण करते हैं। वस्तुतः ये चारों ग्रन्थ अपने–अपने काल के नायक हैं। आज भी इन चारों ग्रन्थों का दूसरा कोई विकल्प नहीं प्राप्त हो सका।

ध्वन्यालोक ग्रन्थ में आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनिमत स्थापना में अपनी समस्त ऊर्जा निविष्ट कर दी। ध्वन्यालोक में काव्य के दोष–गुण पक्ष का प्रबन्धन नहीं हो सका। फलतः इसकी अपूर्णता किसी सके छिपी नहीं है। यह ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों के सहयोग से ही समझा जा सकता है। अतः यह अपने आधार को ढूंढ़ता है।

काव्यप्रकाश ग्रन्थ में आचार्य मम्मट ने अत्यन्त दुरूहता, प्रगाढ़पाण्डित्य एवं सूत्रशैली के कारण दुर्बोधत्व उत्पन्न किया। उनकी शैली पण्डितों की मनीषी के ऊपर से गुजर जाने वाली है। संस्कृतसाहित्य का सामान्य विद्यार्थी काव्यप्रकाश से उपकृत

नहीं हो सकता। काव्यप्रकाश की दुरधिगमता सभी को विभीषा में डालती है।

साहित्यदर्पण ग्रन्थ में आचार्य विश्वनाथ कविराज ने सरलशैली का प्रयोग किया है। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ सम्पूर्ण है। इसमें नाट्यतत्व का भी भरपूर उपयोग हुआ है। ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश में प्रतिपादित विषयों का साहित्यदर्पण ग्रन्थ में बहुस्थलों पर नवीनता के साथ उपस्थिति दर्शायी गयी है। साहित्यदर्पण ग्रन्थ में वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट के मत का खण्डन करते हुए आचार्य विश्वनाथ कविराज ने रस को काव्यात्मा घोषित किया है। अलंकारशास्त्रीय जगत् में रस से सम्बन्धित यह स्पष्ट मान्यता स्थापित हुई थी। आचार्य विश्वनाथ कविराज के अनुसार गुण रस में निहित होते हैं, शब्दार्थ में नहीं। शब्द और अर्थ रस के व्यंजक नहीं होते हैं। परम्परा सम्बन्ध (उपचार) से इनमें भी गुण रह सकते हैं ऐसा नहीं है क्योंकि शब्दार्थ में यदि रस नहीं रह सकता तो गुण भी नहीं रक सकते, क्योंकि अन्वय–व्यतिरेक से गुण रस का अनुगमन करते हैं। यदि ऐसा होता तो शब्दार्थौ रसवन्तौ कहा जाता। साहित्यदर्पण में अपूर्व स्थापना देते हुए कहा गया– काव्यस्य शब्दार्थौं शरीरं, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्, अलङ्काराः कटककुण्डलादिवत्।

नाट्यशास्त्र, दशरूपक आदि दृश्य काव्यलक्षण ग्रन्थों के बाद साहित्यदर्पण में विस्तार के साथ नायक–नायिका के संदर्भ में उल्लेख प्राप्त होता है। काव्यप्रकाश ग्रन्थ की तरह साहित्यदर्पण भी कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण के त्रिविध भेद से सुसज्जित है। कारिका और वृत्ति में दोनों भाग श्रीविश्वनाथ कविराज के हैं। उदाहरण में आपने स्वकीय और सरकीय दोनों का प्रयोग किया है। उदाहरणों की प्राबलता सर्वत्र दर्शनीय हैं। जहाँ कहीं गहन विषय प्राप्त हुआ यहाँ आचार्य में सरलता के साथ विस्तारपूर्वक, कठिनता को हटाकर लेखन किया है। दुर्गम और दुर्बोध विषय को भी आपने सुगम एवं सुबोध कर दिया है। इस संदर्भ में आपकी प्रतिश्रुति दर्शनीय है–

साहित्यदर्पणममुं संधियो विलोढय।
साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेव वित्त।।

साहित्यदर्पण में चतुवर्ग फलप्राप्ति के सिद्धान्त को विस्तार के साथ प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के प्रति किसी भी आचार्य के मन में विभेद नहीं उत्पन्न होता है अर्थात् यह सिद्धान्त सर्वजन स्वीकार्य है। अलंकार ग्रन्थों में दोष और गुणों की सर्वथा चर्चा हुई है, परन्तु किसी आचार्य ने रस का निरूपण किया तो किसी ने नहीं किया। आचार्य वाग्भट्ट ने रस का प्रतिपादन किया और काव्यप्रकरण प्रणली को लिखा। आचार्य वामन ने वृत्ति का प्रतिपादन किया। चन्द्रालोक में काव्यधर्म का निरूपण हुआ। काव्यप्रकाश में अभिधा, लक्षणा, व्यंजना का विषद विवेचन हुआ। साहित्यदर्पण में दृश्य एवं श्रव्य दोनों काव्यों का विस्तार के साथ निरूपण हुआ। यह विशेषता अन्यत्र कहीं भी नहीं दिखाई देती। आचार्य दण्डी ने दश दोषों की चर्चा की, महाराज भोज ने वाक्य और वाक्यार्थगत षोडश दोषों को प्रतिपादित किया। आचार्य वामन के मत में शब्दगत गुण एवं अर्थगत गुण 10–10 हैं। महाराज भोज के मत में 24 हैं। आचार्य ममट एवं आचार्य विश्वनाथ के मत में गुण शब्दार्थगत न होकर रसगत होते हैं और ये 3 हैं। आचार्य दण्डी एवं महाराज भोज ने प्रहेलिका आदि को अलंकार माना है, परन्तु आचार्य मम्मट एवं आचार्य विश्वनाथ ने इस रूप में स्वीकार नहीं कियज्ञं

काव्यात्मा रस की स्थापना

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने जातिवाद को आत्मसात् कर यह सिद्ध किया कि काय की आत्मा रस है। फलतः आपने काव्य की परिभाषा दी–वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। साहित्य समुद्र के मंथन में यह सिद्ध हो चुका था कि अलंकार काव्य के अपकारक तत्व है। ये बाह्य है–कटक, कुण्डलादि की तरह। काव्य में व्यंजना व्यापार के द्वारा प्रतीयमान अर्थ की उत्पत्ति होती है। यह वाक्यार्थभूत व्यंग्य होता है। व्यंजना से सहृदय–हृदय में रस की उत्पत्ति होती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अभिधा वादी आचार्यों के मत को निरस्त कर सिद्ध किया कि ध्सवनि काव्य की आत्मा है–काव्यस्यात्माध्वनिरिति। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने ध्वनिवाद का आलम्बन लेकर ध्वनि के प्रकार विशेष को प्रधानत्व प्रदान करते हुए रस को काव्य की आत्मा निर्णीत किया। काव्य में रस को आत्मस्थान में स्थापित करने की परिपाटी पहले से चली आ रही थी। इसकी प्रथम झलक अग्निपुराण में मिलती है–वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। आचार्य राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में रस आत्मा कहकर रस को आत्मस्थानीय सिद्ध किया। प्रायशः आचार्यों ने अलंकार को शोभा काआधायक मानकर रस को आत्मा के रूप में स्वीकार किया। अलङ्कारस्तु शोभायै रस आत्मा परं मनः। यद्यपि आचार्य भामह के अनुसार–मुक्तं लोकस्वभावेन रसैश्चसकलैः पृथक्। आचार्य दण्डी ने भी स्वीकार किया कि सभी अलंकार रस को ही निषिञ्चित करते हैं–कामं सर्वोऽप्यलङ्कारो रसमर्थे निषिञ्चति। आचार्य रूद्रट ने काव्य निर्माण में रस की उत्पत्ति के प्रति विशेष ध्यान देने का आग्रह किया–तस्मात्कर्त्तव्यं महीयसा रसैर्युतम्। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य की आत्मा वस्तुतः रस ही है। वस्तु, अलंकार, ध्वनि सर्वथा रस के पर्यवसित होत है। अतः सामान्य रूप से कहा गया–काव्यस्यात्मा ध्वनिः। प्राचीन आचार्य काव्य में रस की प्रधानता नहीं मानते, जबकि आचार्य आनन्दवर्धन रस को ही प्रधान कानते हैं। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण के आरम्भ में ही ध्वनि के प्रकार विशेष को काव्य में रस स्वरूप आत्मा स्थापित किया है। आपने काव्य की परिभाषा देते हुए स्पष्ट कर दिया–वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। यह एक ऐसी परिभाषा है जिसे आज तक कोई काट नहीं सका। ऐसी सरलत और स्पष्ट काव्य–परिभाषा अन्यत्र नहीं मिलती।

आचार्य विश्वनाथ का कविराजत्व

आचार्य विश्वनाथ की मूल उपाधि महापात्र है। यह उत्कल विप्रों की प्रतिष्ठापरक उपाधि है। आचार्य विश्वनाथ असामान्य कवि हैं। आपकी मेधा न केवल संस्कृत साहित्य में अपूर्व प्रतिफलित होती है, बल्कि व्याकरण और न्यायशास्त्र में भी पग–पग पर अपनी छाप छोड़ती है। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण के प्रथम परिच्छेद में अनुान में व्यंजना वृत्ति का अन्तर्भाव करने वाले नैयायिकों के मत को रखकर उसका जोरदार विखण्डन किया है। वेदान्तशास्त्र में भी कविराज का कोई जोड़ नहीं है। इसी प्रकार से नाट्य के समस्त प्रविभागों में आपका प्रौढ़ प्रवेश है। इन सभी विषयों का प्रत्यक्ष प्रमाण साहित्यदर्पण ग्रन्थ ळें

नाट्यविषय का प्रतिपादन

साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में दृश्य काव्य के लक्षण और उपयोगी नाटय वस्तुओं के संदर्भ में विशद विवेचन किया गया है। धनंजय प्रणीत दशरूपक का संक्षिप्त अनुवाद है साहित्यदर्पण का षष्ठ परिच्छेद ऐसा आरोप कतिपय आलोचक आचार्य विश्वनाथ पर लगाते हैं, परन्तु यह तथ्य सत्य नहीं है। साहित्यदर्पण में ऐसे अनेक विषय हैं जो दशरूपक में प्रतिपादित नहीं हुए हैं। उपरूपक लक्षण दशरूपक में विद्यमान नहीं है जिनका विशद विवेचन साहित्यदर्पण में है। साथ ही आचार्य विश्वनाथ कविराज ने आचार्य धनंजय के अनेक मतों का खण्डन किया है। आचार्य विश्वनाथ कविराज ने अनेक अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों का पर्यालोचन कर अपूर्व वैदुष्य को प्राप्त किया है। साहित्यदर्पण में इनके द्वारा उदाहृत स्वविरचित श्लोकों में सरस कोमल पदावली की प्राप्ति होती है तथा प्रसन्न वाग्वैभव दिखलाई देता है। तत्कीन संस्कृताचार्यों ने आपको

अष्टादशभाषावारविलासिनीभुज¯ कहा। आपके द्वारा विरचित प्रशस्तिरत्नावली सोलह भाषाओं में उपनिबद्ध ळें

आचार्य विश्वनाथ कविराज के ग्रन्थ

साहित्यदर्पण ग्रन्थ के षष्ठ परिच्छेद में आचार्य ने स्वविरचित अनेक ग्रन्थों का उल्लेख किया है तथा यत्र–तत्र स्वग्रन्थ के उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। इनकी कृतियों का प्रायशः उल्लेख निम्वत् है– 1. प्रभावती परिणयम्, 2. चन्द्रकला नाटिका, 3. कुलयश्वचरितम् (प्राकृत), 4. प्रशस्ति रत्नावली, 5. राघव–विलासः (महाकाव्य), 6. नरसिंह विजयः (खण्डकाव्य), 7. काव्यप्रकाशदर्पणः, 6. कंसवधम् (काव्यम्)। अन्य अनेक प्रबन्ध भी आपके थे, जो आज उपलब्ध नहीं हैं। इन प्रबन्धों के श्लोकों का उदाहरण रूप में उपस्थिति मिलती है। साहित्यदर्पण की रचना के बाद काव्यप्रकाश दर्पण नामक टीका की रचना आचार्य विश्वनाथ कविराज के द्वारा की गयी थी। इस टीका में साहित्यदर्पण का उल्लेख किया गया है। लक्षणाभेद में निमित्त दर्शित उदाहरणों को मेरे साहित्यदर्पण ग्रन्थ से समझना चाहिए–एषां च ज्ञोतमाणानां लक्षणाभेदानामिह दर्शितान्युदाहरणानि मम साहित्यदर्पणेऽवगंतव्यानि। [3] अध्याय 10।
साहित्यदर्पण ग्रन्थ में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी उद्घाटन होता है। धर्मदत्त का उल्लेख इस बात को सिद्ध करता है। विद्वान् धर्मदत्त को नारायणदास ने राजसभा में पराजित किया था।

साहित्यदर्पण की टीकाएँ

1. साहित्यदर्पण के ऊपर श्री अनन्तदासकृत लोचनटीका अत्यन्त प्रसिद्ध है।
2. श्री महेश्वरर्कालंकार प्रणीत विज्ञप्रिया टीका है।
3. श्री नाथूराम विरचित टीका 1828 ईस्वी।
4. श्री रामचन्द्र तर्कवागीश विरचित विवृत्ति।
5. श्री चण्डीचरण स्मृतिभूशण विरचित टीका।
6. श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी विरचित टीका, निर्णय सागर प्रेस 1902, 1915, 1951।
7. श्री पी0बी0 काणे द्वारा सम्पादित (टीका रहित) संस्करण 1910, 1923, 1951।
8. श्री करूणाकर काव्यतीर्थ द्वारा सम्पादित संस्करण 1938।
9. श्री गोपीनाथ विरचित प्रभा टीका।
10. श्री शालग्राम शास्त्री विरचित प्रभा टीका।

श्री अनन्तदास विरचित लोचन टीका की प्रति 1936 में प्राप्त हुई थी। री मथुरानाथ शुक्ल ने टिप्पण दिये थे जो 18वीं शताब्दी सम्भवतः 1783 के आस–पास के हैं। श्रीरामचन्द्र तर्क वागीश ने 1700 ईस्वी में विवृत्ति टीका को पूर्ण किया था। इस टीका के अनेक बंगला संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। श्री गोपीनाथ विरचित प्रभा टीका प्रायशः 1677 ईस्वी के आस–पास की है। 17वीं शताब्दी के मध्य में श्री महेश्वरतर्कालंकार ने विज्ञप्रिया टीका लिखी। री शालग्राम शास्त्री विरचित विमला टीका का प्रकाशन मोतीलाल बनारसी दास, काशी से हुआ। यह टीका अतयन्तवैदुष्यपूर्ण है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इस प्रकार से आचार्य विश्वनवाथ कविराज विरचित साहित्यदर्पण उड़ीसा तथा बंगाल से होते हुए काशी में पहुँचा 18वीं शताब्दी में साहित्यदर्पण की चर्चा बृहत्तम् भारतवर्ष में हो चुकी थी। काशी में यह पाठ्यग्रन्थ में समायोजित किया जा चुका था।
साहित्यदर्पण की समालोचना पर एक विशद ग्रन्थ लिखा जा सकता है। दश परिच्छेदों का यह अलंकार ग्रन्थ अत्यनत विशाल एवं विविध विषयों से परिपूर्ण है। इसके प्रथम परिच्छेद में काव्यनिरूपण, आचार्य मम्मट के काव्य लक्षण का खण्डन है। साथ ही वाक्य रसात्मकं काव्यम् का प्रतिपादन है। द्वितीय परिच्छेद में वाक्य तथा पद का लक्षण एवं शब्द शक्तियों का विवेचन हैं तृतीय परिच्छेद में रस निष्पत्ति का मनोहारी विवेचन तथा नायक–नायिका भेद का प्रतिपादन है। चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनिकाव्य तथा गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन है। पंचम परिच्छेद में व्यंजना वृत्ति का निरूपण तथा षष्ठ परिच्छेद में रूपक का निरूपण है। सप्तम परिच्छेद में काव्यदोष का निरूपण तथा अष्टम् परिच्छेद में काव्यगुण का निरूपण है। नवम परिच्छेद में रीति विवेचन तथा दशम् परिच्छेद में अलंकार–विवेचन है। इस प्रकार से आचार्य विश्वनाथ कविराज की रचना में रस की शैय्या है, ललित पदावलियाँ हैं, अपूर्व कल्पना जाल है तथा चेतना को झंकृत कर देने वाली काव्य भावना है। अतः आचार्य अनन्तदास ने कहा–

विख्यातः कविराज इति यः श्रीविश्वनाथ कृती।
तस्याकर्ण्यगिरः शिरांसि भुजगाधीशोधुनीतेऽधुना।।

संदर्भ ग्रंथ

1. साहित्यदर्पण, 4/14
2. साहित्यदर्पणः, प्रथम परिच्छेदः, श्लोक 2
3. काव्यप्रकाश दर्पण, अध्याय–10